मौन क्रांतिः भारत के गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों का राजनैतिक तर्क
Quiet Revolution: The Political Logic of India's Anti-Poverty Programs

आदित्य दासगुप्ता
Aditya Dasgupta
April 7, 2014

पिछले पंद्रह वर्षों में भारत में महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों का एक तरह का अकारादि सूप तैयार होते देखा गया हैः ग्रामीण संपर्क योजना (PMGSY), सार्वभौमिक प्राथमिक स्कूलिंग पहल (SSA), ग्रामीण स्वास्थ्य पहल (NRHM), ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (RGGVY), ग्रामीण रोज़गार गारंटी अर्थात् नरेगा (NREGA),खाद्य सहायता के लिए खाद्य सुरक्षा अधिनियम और गरीबों को सीधे लाभ पहुँचाने के लिए एक नया डिजिटल बुनियादी ढाँचा (UID). बिना किसी शोर-शराबे के इन कार्यक्रमों से ज़मीन पर लोगों को असली लाभ मिल रहा है और भारत की गरीबी-विरोधी नीतियों को क्रांतिकारी स्वरूप मिलने लगा है. ये कार्यक्रम कहाँ से आये हैं? और चुनावों में इनका क्या हश्र हो रहा है? ग्रामीण रोज़गार गारंटी अर्थात् नरेगा (NREGA) का अनुभव यह बताता है कि भारतीय चुनावों में गरीबी-विरोधी प्रभावी कार्यक्रमों की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है और अब यह सिलसिला आगे भी बना रहेगा.

नरेगा जैसा कार्यक्रम भारत में गरीबी हटाने की रणनीति की मौन क्रांति है. दशकों से भारत इस विश्वास को चुनौती देता रहा है. कभी-कभी इसे राजनैतिक वैज्ञानिकों का "मीडियन वोटर थियोरम" भी कहा जाता है और साथ ही लोकतांत्रिक देशों में राजनीतिज्ञ उन मतदाताओं का ख्याल रखते हैं जो बहुसंख्यक होते हैं. लोकतांत्रिक संस्थाओं और मुख्यतः गरीब मतदाताओं की विशाल संख्या होने के बावजूद भारत के सत्ताधारी राजनैतिक दलों की प्राथमिकता कभी-भी गरीबों को लाभ पहुँचाना नहीं होती. पुराने तरीके का ही उदाहरण लेते हैं. जैसे बीपीएल कार्ड अर्थात् गरीबी की रेखा के नीचे का कार्ड एक बदनाम कार्ड है. परंपरागत रूप में सरकार की कल्याण योजनाओं का आधार यही कार्ड होता है. अनेक सर्वेक्षणों के अनुसार भारत के आधे गरीब लोगों के पास तो बीपीएल कार्ड ही नहीं हैं. इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है; गाँवों पर किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि पंचायतों द्वारा जारी किये जाने वाले बीपीएल कार्डों के वितरण में बहुत धाँधली होती है, क्योंकि गरीबी हटाने के नाम पर भ्रष्टाचार और राजनैतिक प्रभाव का यह एक सशक्त साधन है.
आइए, नयी फ्लैगशिप योजना के रूप में चलायी गयी नरेगा की योजना से इसकी तुलना करते हैं. खूब जाँचे-परखे बीपीएल कार्ड के विपरीत नरेगा का डिज़ाइन सार्वभौमिक है और इसके अंतर्गत माँग करने वाले किसी भी ग्रामीण को सौ दिन के रोज़गार की गारंटी है. हालाँकि नरेगा के प्रशासन में भी भ्रष्टाचार और अकुशलता की गुंजाइश है. कुछ राज्यों में तो यह योजना ठीक ढंग से काम कर रही है, लेकिन कुछ राज्यों में इसकी स्थिति ठीक नहीं है, फिर भी अध्ययन से पता चलता है कि इसमें सुधार हो रहा है. इसका आंशिक कारण यह है कि इसमें सामाजिक लेखा परीक्षा अर्थात् सोशल ऑडिट जैसे कुछ ऐसे उपाय किये गये हैं, जिनसे इसमें पारदर्शिता बनी रहती है, लेकिन इसका मुख्य कारण यह है कि इस पर सामाजिक और राजनैतिक दबाव बना रहता है. सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि नरेगा की पहुँच ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब लोगों तक हो गयी है. अनेक स्वतंत्र मूल्यांकनों से पता चलता है कि नरेगा के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब कामगारों की मज़दूरी में बढ़ोतरी हुई है, जिसके कारण ग्रामीण नियोजकों ने इस कार्यक्रम में कटौती करने की सामूहिक रूप में गुहार लगायी है. ऐसा क्या कारण है कि भारत अब अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली और साधन-संपन्न लग रहा है और दशकों तक यह

राजनैतिक इच्छा शक्ति के बिना ही संकीर्ण कार्यक्रम चलाता रहा है और अब नरेगा जैसे सार्वभौमिक गरीबी-विरोधी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं. कुछ लोग इस परिवर्तन का कारण मानते हैं नये उत्साही राजनैतिक कार्यकर्ताओं को, जिनमें न्यायपालिका और सिविल सोसायटी के सक्रिय कार्यकर्ता भी शामिल हैं, लेकिन यह कहानी अधूरी है. शेष आधी कहानी में नये कार्यक्रमों के प्रति सत्ताधारी दल के लोगों का असाधारण उत्साह भी है. इसी उत्साह के कारण कांग्रेस पार्टी ने राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का गठन किया था. यह परिषद एक ऐसी राजनैतिक सलाहकार संस्था है, जिसमें सिविल सोसायटी के कई सक्रिय कार्यकर्ताओं को सहयोजित किया गया है. इसी परिषद ने सन् 2005 में नरेगा को पारित कराने में विशेष भूमिका का निर्वाह किया था.

इस परिवर्तन की वजह यह नहीं है कि राजनीतिज्ञों के इरादे अच्छे हो गये हैं- अच्छे इरादे पहले कहाँ थे? सच तो यह है कि राजनैतिक दल यह समझने लगे हैं कि गरीबी-विरोधी प्रभावी कार्यक्रमों से ही चुनाव जीता जा सकता है. सन् 2004 में भाजपा-नीत राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन अर्थात् एनडीए का उदीयमान भारत का अभियान राजनैतिक दृष्टि से बुरी तरह विफल रहा था, क्योंकि गाँवों में फैली गरीबी को मिटाने में इसका कोई योगदान नहीं था. लगता है कांग्रेस के नेताओं ने इससे ज़रूर सबक लिया और सत्ता में आते ही जल्द ही ग्रामीण रोज़गार गारंटी के वायदे को पूरा करने का अपना प्रयास शुरू कर दिया. सन् 2009 में कांग्रेस-नीत यूपीए की जबर्दस्त कामयाबी का मुख्य कारण नरेगा ही था.

राज्यों के हाल ही के विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार से कुछ सवाल उठे थे कि चुनावों में कांग्रेस पार्टी को गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों से सचमुच कुछ लाभ हुआ या नहीं. लेकिन देश-भर में राज्यों के हाल ही के विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस की स्थिति के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित शोध से यह पता चला कि इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन के आरंभिक चरणों में (जब कुछ ज़िलों में कार्यक्रम शुरू हो गया था और कुछ ज़िलों में शुरू नहीं हो पाया था) नरेगा के कारण राज्यों के विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस के वोट शेयर में काफ़ी वृद्धि हुई थी. यह वृद्धि लगभग चार प्रतिशत थी. भारत के करीब से लड़े जाने वाले चुनावों के लिए यह वृद्धि बहुत अधिक है. यह तो सच है कि कांग्रेसी राजनीतिज्ञ अपने अभियानों में नेमी तौर पर तो यह मानते रहे कि इससे चुनावों में लाभ मिलता है, लेकिन उनकी रणनीतिक चूक यही रही कि वे आगे बढ़कर इसका श्रेय नहीं ले पाये. अगर यूपीए इस चुनाव में हार जाती है तो इसका कारण यही होगा कि उसने कई मुद्दों पर मतदाताओं को अपने से दूर कर दिया था.

यदि भाजपा-नीत एनडीए इस राष्ट्रीय चुनाव में जीतती है, जैसा कि पूर्वानुमान किया गया है, तो नरेगा का भविष्य क्या होगा? राजनीति में पूर्वानुमान लगाना खतरनाक होता है, लेकिन वर्तमान साक्ष्य के आधार पर पढ़े-लिखे लोग इसका अनुमान तो लगा ही सकते हैं. भाजपा के लोग जनता की नज़रों से बचते हुए नरेगा को "दान" कहकर भले ही उसकी आलोचना करते हों, लेकिन यह भी सच है कि भाजपा शासित राजस्थान और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में भी नरेगा की योजना को बहुत अच्छे तरीके से लागू किया गया है. ये सरकारें मानती हैं कि इसकी आलोचना करने के बजाय गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों को लागू करने से गरीब मतदाताओं की नज़रों में उनकी साख़ अच्छी बनी रहती है. राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के सत्ता में आने पर भी इस बात की कोई संभावना नहीं है कि नरेगा को खुले तौर पर बंद कर दिया जाएगा. कभी-कभी लोग यह भूल जाते हैं कि जब भाजपा सत्ता में थी तो उसने भी सर्वशिक्षा अभियान और प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना जैसी गरीबी-विरोधी योजनाओं को व्यापक स्तर पर सारे देश में लागू किया था. उसके बाद जब यूपीए सत्ता में आयी तो उसने भी

इन योजनाओं को पूरी तरह से जारी रखा.

नरेगा पर किये गये मेरे शोध से कुछ रोचक परिणाम भी सामने आये हैं. सूखे के कारण आयी आर्थिक तंगी के दिनों में राज्य स्तर के गैर-कांग्रेसी दलों को भी नरेगा से लाभ मिला था और उन्होंने नरेगा की सहायता से रोज़गार के अवसर जुटाने में काफ़ी सफलता प्राप्त की थी. इससे यह पता चलता है कि एक ही गरीबी-विरोधी कार्यक्रम से श्रेय लेने की होड़ में विरोधी दल भी आगे निकल सकते हैं. खाद्य सुरक्षा अधिनियम के साथ भी यही हुआ था. नवंबर, 2013 में छत्तीसगढ़ में कांग्रेस की रैली को संबोधित करते हुए कांग्रेस की अध्यक्ष सोनिया गाँधी ने खाद्य सुरक्षा अधिनियम को राष्ट्रीय स्तर पर लागू कराने का श्रेय अपनी पार्टी को दिया था और भाजपा के प्रधानमंत्री पद के दावेदार नरेंद्र मोदी ने इस बात के लिए श्रेय लिया था कि छत्तीसगढ़ में राज्य-स्तर की उनकी सरकार ने मूल रूप में खाद्य सुरक्षा का विचार पहले सामने रखा था और बाद में इसे राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया गया. भारतीय राजनीति अब ऐसे दौर में पहुँच गयी है कि प्रतिस्पर्धी दल इस बात को लेकर होड़ कर रहे हैं कि सरकारी कार्यक्रमों के ज़रिये किसने गरीबों को अधिक लाभ पहुँचाया और साथ ही इससे भारत की ग्राहक-आधारित सड़ी-गली राजनैतिक प्रणाली को भी चुनौती दे रहे होते हैं जिसमें नीतियों का कोई महत्व नहीं होता.

भारत सार्वभौमिक और व्यापक गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों के संक्रमण के इस दौर के अनुभव में अकेला नहीं है. एक दशक पहले ऐसा ही एक संक्रमण का दौर आया था जब मैक्सिको और ब्राज़ील जैसे लातीनी अमरीका के देश भी ऐसे ही दौर से गुज़र रहे थे. भारत की तरह इन देशों में भी राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दलों के बीच होड़ बहुत तेज़ हो गयी थी. ऐसे मामलों का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि जब कोई नया दल सत्ता में आता है तो वह वर्तमान योजनाओं को बंद नहीं करता, बल्कि वर्तमान योजनाओं से श्रेय लेने की कोशिश करता है,क्योंकि विकासशील देशों के बहुदलीय चुनावों में जो बात सबसे अधिक कारगर होती है, वह है बहुसंख्यक गरीब मतदाताओं का वोट बैंक. भले ही आप इसे सस्ती लोकप्रियता कहें या फिर लोकतांत्रिक प्रतिक्रिया, लेकिन यह तय है कि सत्ता किसी के भी हाथ में क्यों न रहे, नरेगा जैसे गरीबी-विरोधी कार्यक्रम भारत में लंबे समय तक चलते रहेंगे.

आदित्य दासगुप्ता हार्वर्ड विश्वविद्यालय में राजनैतिक विज्ञान के डॉक्टरेट के प्रत्याशी हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>